

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 10 अध्याय 74 — शिशुपाल का उद्धार

5 October 2026



युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में सहदेव अकेले श्रीकृष्ण को अग्रपूजा के योग्य बताते हैं; शिशुपाल प्रभु की निन्दा करता है, और देवताओं तथा राजाओं के देखते-देखते चेदिराज के शरीर से एक ज्योति उठकर श्रीकृष्ण में समा जाती है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में पुनः स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पवित्र कथाओं और शिक्षाओं की हमारी भक्तिमयी यात्रा। दशम स्कन्ध का यह चौहत्तरवाँ अध्याय हमें युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में ले चलता है, जहाँ किशोर सहदेव प्रथम सम्मान का निर्णय कराते हैं और शिशुपाल का दीर्घ वैर प्रभु की उपस्थिति में समाप्त होता है।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 10 (दशम स्कन्ध, उत्तरार्ध)
- अध्याय: 74 (चतुःसप्ततितम अध्याय)

- अध्याय शीर्षक: राजसूय यज्ञ में शिशुपाल का उद्धार
- मुख्य वक्ता: श्री शुकदेव गोस्वामी (राजा परीक्षित को सुनाते हुए); अध्याय के भीतर युधिष्ठिर, सहदेव और शिशुपाल भी बोलते हैं
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित
- मुख्य स्थल: इन्द्रप्रस्थ, राजसूय यज्ञ की यज्ञशाला
- केंद्रीय विषय: राजसूय की सभा; श्रीकृष्ण की अग्रपूजा का सहदेव का प्रस्ताव; शिशुपाल की निन्दा और उसका उद्धार; अवभृथ-स्नान और दुर्योधन की ईर्ष्या
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 10, अध्याय 74, श्लोक 1-54
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, दशम स्कन्ध, अध्याय 74)

पूर्व अध्याय का संदर्भ

तिहत्तरवें अध्याय में श्रीकृष्ण ने भीम द्वारा जरासन्ध-वध से मुक्त हुए राजाओं को सान्त्वना दी, उन्हें भक्ति और वैराग्य का उपदेश दिया और अपने-अपने राज्यों को विदा किया। जरासन्ध के पुत्र सहदेव से सम्मानित होकर वे भीम और अर्जुन के साथ इन्द्रप्रस्थ लौटे, जहाँ युधिष्ठिर प्रभु की कृपा पर आनन्द के आँसू बहाने लगे।

युधिष्ठिर की कृतज्ञता के वचन

जरासन्ध के पतन और भगवान् श्रीकृष्ण के परम प्रभाव का समाचार सुनकर युधिष्ठिर विस्मय से भरे हृदय से प्रभु की ओर मुड़े। उन्होंने कहा — ब्रह्मा, शंकर और इन्द्र जैसे लोकपाल आपकी आज्ञा पाना दुर्लभ सौभाग्य मानते हैं; फिर भी हे अनन्त, आप हम-जैसे दीन-हीन मनुष्यों की आज्ञा मानते हैं, जो स्वयं को शासक समझने का अभिमान पाले हैं। हे कमलनयन, यह केवल मनुष्य-लीला का आपका अनुकरण है। जैसे सूर्य का तेज उदय से बढ़ता नहीं और अस्त से घटता नहीं, वैसे ही आपके कर्म आपकी महिमा को न बढ़ाते हैं न घटाते हैं, क्योंकि आप अद्वितीय परब्रह्म हैं। “मैं और मेरा, तू और तेरा” की कुटिल भेद-बुद्धि केवल अज्ञानियों में रहती है; आपके भक्तों में भी उसका स्थान नहीं, आपमें तो और भी नहीं। अतः आप जो कुछ करते हैं, वह केवल आपकी लीला है।

महान् सभा का समागम

श्रीकृष्ण की सम्मति से युधिष्ठिर ने शुभ मुहूर्त चुनकर वेदज्ञ ब्राह्मणों को ऋत्विज बनने के लिए आमन्त्रित किया: कृष्णद्वैपायन व्यास, भरद्वाज, सुमन्तु, गौतम, असित, वसिष्ठ, च्यवन, कण्व, मैत्रेय, कवष, त्रित, विश्वामित्र, वामदेव, सुमति, जैमिनि, क्रतु, पैल, पराशर, गर्ग, वैशम्पायन, अथर्वा, कश्यप, धौम्य, परशुराम, शुक्राचार्य, आसुरि, वीतिहोत्र, मधुच्छन्दा, वीरसेन और अकृतव्रण। उन्होंने द्रोण, भीष्म, कृप, सभी पुत्रों सहित धृतराष्ट्र और महामति विदुर को भी यज्ञ-कार्य में सहयोग के लिए बुलाया, और यज्ञ देखने के लिए मन्त्रियों सहित राजा तथा चारों वर्णों के लोग दिशा-दिशा से आए।

ऋत्विजों ने सोने के हलों से यज्ञभूमि जोती और शास्त्रविधि से युधिष्ठिर को यजमान की दीक्षा दी। यज्ञ के सभी पात्र सोने के थे, जैसे प्राचीन काल में वरुण के यज्ञ में थे। ब्रह्मा, शंकर, इन्द्र और अन्य लोकपाल; सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर और नाग; मुनि, यक्ष, राक्षस, पक्षी, किन्नर और चारण; तथा रानियों सहित पराक्रमी राजा — सबने पाण्डुपुत्र का निमन्त्रण स्वीकार किया। किसी को उनकी योग्यता पर सन्देह न हुआ, क्योंकि

श्रीकृष्ण के भक्त के लिए कुछ असम्भव नहीं। देवतुल्य तेजस्वी ऋत्विजों ने राजसूय वैसे ही सम्पन्न किया जैसे देवताओं ने कभी वरुण के लिए किया था, और सोमयाग के दिन युधिष्ठिर ने ऋत्विजों और सदस्यों का आदरपूर्वक सत्कार किया।



ऋत्विज सोने के हलों से यज्ञभूमि जोतकर युधिष्ठिर को दीक्षा देते हैं, और ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, ऋषि, गन्धर्व तथा रानियों सहित राजा राजसूय में एकत्र होते हैं।

सहदेव का अग्रपूजा का प्रस्ताव

अब सभा में यह विचार उठा कि अग्रपूजा — यज्ञ का प्रथम सम्मान — किसे मिले, किन्तु सहमति न बन सकी। तब पाण्डवों में सबसे छोटे सहदेव उठे और बोले।

अर्हति ह्यच्युतः श्रैष्ठ्यं भगवान् सात्वतां पतिः ।

एष वै देवताः सर्वा देशकालधनादयः ॥ १९ ॥

arhati hy acyutaḥ śraiṣṭhyaṁ bhagavān sātvatām patiḥ eṣa vai devatāḥ sarvā deśa-kāla-dhanādayaḥ

अर्थ: सात्वतों के स्वामी भगवान् अच्युत ही निश्चय इस सर्वोच्च सम्मान के अधिकारी हैं, क्योंकि वे ही समस्त देवता हैं और वे ही देश, काल, धन तथा अन्य सब कुछ हैं। (स्कन्ध 10, अध्याय 74, श्लोक 19)

सहदेव ने आगे कहा — यह समस्त विश्व उन्हीं का प्रकाश है। वे ही यज्ञ हैं, वे ही अग्नि, आहुति और मन्त्र हैं; ज्ञानमार्ग और कर्ममार्ग दोनों उन्हीं तक पहुँचते हैं। वे अद्वितीय परब्रह्म हैं, यह ब्रह्माण्ड उनका शरीर है; अजन्मा और स्वतन्त्र होकर भी वे अपनी इच्छा से इसकी सृष्टि, पालन और संहार करते हैं, और उनकी कृपा से ही लोग धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की साधना करते हैं। अतः महानों में भी महान् श्रीकृष्ण को ही प्रथम पूजा दी जाए — क्योंकि उनका सम्मान करने से हम समस्त प्राणियों का और अपनी आत्मा का भी सम्मान कर लेते हैं।

सर्वभूतात्मभूताय कृष्णायानन्यदर्शिने ।

देयं शान्ताय पूर्णाय दत्तस्यानन्यमिच्छता ॥ २४ ॥

sarva-bhūtātma-bhūtāya kṛṣṇāyānanya-darśine deyaṁ śāntāya pūrṇāya dattasyānanyam icchatā

अर्थ: जो चाहता है कि उसका दान अनन्त फल दे, उसे वह दान श्रीकृष्ण को देना चाहिए, जो समस्त प्राणियों की आत्मा हैं, जो किसी को अपने से भिन्न नहीं देखते, जो पूर्ण शान्त और सब प्रकार से परिपूर्ण हैं। (स्कन्ध 10, अध्याय 74, श्लोक 24)

प्रभु की महिमा जानने वाले सहदेव इतना कहकर मौन हो गए। सभा के सज्जन प्रसन्न होकर पुकार उठे — “साधु! साधु!”



जब सभा प्रथम सम्मान पर एकमत नहीं हो पाती, तब किशोर सहदेव घोषणा करते हैं कि सात्वतों के स्वामी अच्युत स्वयं ही सब देवता, देश, काल और धन हैं (श्लोक 19)।

युधिष्ठिर द्वारा प्रभु की पूजा

ब्राह्मणों की स्वीकृति सुनकर और सभा का मन जानकर प्रेमविह्वल राजा युधिष्ठिर ने हृषीकेश को सर्वप्रथम की पूजा अर्पित की। उन्होंने श्रीकृष्ण के चरण धोए, और द्रौपदी, भाइयों, मन्त्रियों तथा समस्त परिवार सहित उस लोकपावन जल की बूँदें अपने सिर पर धारण कीं।

तत्पादावनिज्यापः शिरसा लोकपावनीः ।

सभार्यः सानुजामात्यः सकुटुम्बो वहन्मुदा ॥ २७ ॥

tat-pādāv avanijyāpaḥ śirasā loka-pāvanīḥ sa-bhāryaḥ sānujāmātyaḥ sa-kuṭumbo vahan mudā

अर्थ: उनके दोनों चरण धोकर राजा ने पत्नी, छोटे भाइयों, मन्त्रियों और कुटुम्ब सहित लोकों को पवित्र करने वाले उस जल को आनन्दपूर्वक अपने मस्तक पर धारण किया। (स्कन्ध 10, अध्याय 74, श्लोक 27)

फिर उन्होंने प्रभु को पीले रेशमी वस्त्र और बहुमूल्य आभूषण भेंट किए; किन्तु आँसुओं से भरी आँखों से वे सामने के स्वरूप को देख भी न सके। श्रीकृष्ण को इस प्रकार सम्मानित देखकर सभा के सब लोग हाथ जोड़कर “नमो नमः!” और “जय जय!” पुकारने लगे, और आकाश से पुष्पवर्षा होने लगी।

शिशुपाल का प्रलाप

दमघोष का पुत्र शिशुपाल अपने आसन से यह सब सुनकर श्रीकृष्ण की महिमा से जल उठा। वह भुजा उठाए खड़ा हुआ और निर्भय होकर प्रभु के विरुद्ध कटु वचन बोलने लगा। उसने कहा — वेद ठीक ही कहते हैं कि काल ही ईश्वर है, क्योंकि यहाँ एक बालक की बकवास से वृद्धों की बुद्धि भी फिर गई। सभापतियो, प्रथम स्थान के निर्णायक आप हैं; सहदेव की बालबुद्धि को न मानिए। यहाँ तपस्वी, व्रती, ब्रह्मनिष्ठ और देवपूजित ऋषि बैठे हैं; उन्हें छोड़कर यह कुल-कलंक ग्वाला इस सम्मान के योग्य कैसे? क्या कौआ पुरोडाश का अधिकारी है? इसका न वर्ण है, न आश्रम, न कुलीनता; यह सब धर्मों से बाहर है और वेद तथा लोकाचार के विरुद्ध मनमाना आचरण करता है। इसका कुल ययाति के शाप से ग्रस्त, सज्जनों द्वारा बहिष्कृत और मद्यपान में डूबा है; मथुरा और ऋषियों की भूमि छोड़कर ये ब्राह्मणविहीन समुद्र-दुर्ग में छिपे हैं और डाकुओं की तरह निकलकर प्राणियों को सताते हैं।

ऐसे अमंगल वचन शिशुपाल ने कहे, क्योंकि उसका पुण्य समाप्त हो चुका था; और प्रभु ने कुछ उत्तर न दिया, जैसे सिंह सियार के रुदन पर ध्यान नहीं देता। किन्तु सभा से यह निन्दा सही न गई। कुछ लोग कान ढँककर क्रोध में बाहर चले गए और चेदिराज की भर्त्सना करने लगे — और इसका उचित कारण था, शुकदेवजी ने परीक्षित से कहा।

निन्दां भगवतः शृण्वंस्तत्परस्य जनस्य वा ।

ततो नापैति यः सोऽपि यात्यधः सुकृताच्युतः ॥ ४० ॥

nindāṁ bhagavataḥ śṛṇvaṁs tat-parasya janasya vā tato nāpaiti yaḥ so 'pi yāty adhaḥ sukṛtāc cyutaḥ

अर्थ: जो भगवान् की अथवा उनके भक्तजन की निन्दा सुनकर भी उस स्थान से हट नहीं जाता, वह अपने पुण्य से गिरकर अधोगति को प्राप्त होता है। (स्कन्ध 10, अध्याय 74, श्लोक 40)



शिशुपाल उठकर प्रभु की निन्दा करता है; श्रीकृष्ण कुछ उत्तर नहीं देते, जैसे सिंह सियार की उपेक्षा करता है, और निन्दा न सह सकने वाले भक्त कान ढँककर सभा छोड़ देते हैं (श्लोक 40)।

शिशुपाल का उद्धार

अब पाण्डव, मत्स्य, कैकय और सृजय शिशुपाल का अन्त करने को क्रोध में शस्त्र उठाकर खड़े हो गए। निडर शिशुपाल ने भी ढाल-तलवार उठाकर श्रीकृष्ण-पक्ष के राजाओं को फटकारा। तब भगवान् उठे, अपने पक्ष के राजाओं को रोका, और जब शिशुपाल उन पर झपटा, तब कुछ रोष दिखाते हुए अपने तीक्ष्ण धार वाले चक्र से आक्रमणकारी का सिर काट दिया।

चेदिराज के गिरते ही सभा में भारी कोलाहल मच गया, और उसके अनुयायी राजा प्राण बचाकर भागे। फिर सबके देखते-देखते शिशुपाल के शरीर से एक ज्योति उठी और वासुदेव में प्रविष्ट हो गई, जैसे आकाश से टूटा तारा धरती में समा जाता है।

चैद्यदेहोत्थितं ज्योतिर्वासुदेवमुपाविशत् ।

पश्यतां सर्वभूतानामुल्केव भुवि खाच्युता ॥ ४५ ॥

caidya-dehotthitam jyotir vāsudevam upāviśat paśyatām sarva-bhūtānām ulkeva bhuvi khāc cyutā

अर्थ: उपस्थित समस्त प्राणियों के देखते हुए चेदिराज के देह से उठी हुई ज्योति वासुदेव में उसी प्रकार प्रविष्ट हो गई, जिस प्रकार आकाश से गिरी उल्का पृथ्वी में विलीन हो जाती है। (स्कन्ध 10, अध्याय 74, श्लोक 45)

तीन जन्मों तक शिशुपाल ने निरन्तर बढ़ते वैर के साथ अपना मन प्रभु में लगाए रखा था, और उसी अखण्ड चिन्तन से वह उनमें एक हो गया तथा प्रभु के पार्षद का अपना पुराना पद पुनः पा गया। सचमुच, हृदय की वृत्ति ही यह निश्चित करती है कि मनुष्य क्या बनेगा।

जन्मत्रयानुगुणितवैरसंरब्धया धिया ।

ध्यायंस्तन्मयतां यातो भावो हि भवकारणम् ॥ ४६ ॥

janma-trayānuguṇita- vaira-saṁrabdhayā dhiyā dhyāyāms tan-mayatām yāto bhāvo hi bhava-kāraṇam

अर्थ: तीन जन्मों में कई गुना बढ़े हुए वैर से उद्दीप्त बुद्धि द्वारा भगवान् का ध्यान करते-करते वह तन्मयता को प्राप्त हो गया; क्योंकि भाव ही भावी जन्म का कारण होता है। (स्कन्ध 10, अध्याय 74, श्लोक 46)



सबके देखते-देखते चेदिराज से उठी ज्योति उल्का की तरह वासुदेव में प्रविष्ट हो जाती है; तीन जन्मों का वैर प्रभु से तन्मयता में समाप्त होता है (श्लोक 45)।

यज्ञ की पूर्णाहुति

तब सम्राट् युधिष्ठिर ने ऋत्विजों और सदस्यों को उदार दक्षिणा दी, सबका सत्कार किया, और शास्त्रविधि से यज्ञ की समाप्ति का अवभृथ-स्नान किया। योगेश्वरों के भी ईश्वर भगवान् श्रीकृष्ण अपने मित्रों और सम्बन्धियों के आग्रह पर कुछ मास इन्द्रप्रस्थ में रहे; फिर, विदा देने में अनिच्छुक युधिष्ठिर से अनुमति लेकर, अपनी रानियों और मन्त्रियों सहित द्वारका चले गए। शुकदेवजी ने स्मरण कराया कि वे परीक्षित को पहले ही बता चुके हैं कि वैकुण्ठ के दो पार्षद जय और विजय सनकादि के शाप से किस प्रकार बार-बार पृथ्वी पर जन्म लेने को विवश हुए।

राजसूय की समाप्ति पर स्नान किए हुए युधिष्ठिर ब्राह्मणों और क्षत्रियों के बीच इन्द्र के समान शोभित हुए। उनसे सम्मानित देवता, मनुष्य और आकाशचारी श्रीकृष्ण की और राजा के यज्ञ की प्रशंसा करते हुए प्रसन्न मन से अपने-अपने धाम लौट गए। केवल दुर्योधन पाण्डवों की विशाल सम्पदा और राजवैभव को देख न सका, क्योंकि वह स्वभाव से पापी और कलहप्रिय था — कुरुकुल के शरीर में एक रोग, जो उसके विनाश के लिए ही जन्मा था।



समापन के अवभृथ-स्नान के बाद युधिष्ठिर ब्राह्मणों और क्षत्रियों के बीच इन्द्र के समान शोभित होते हैं, और सब श्रीकृष्ण की प्रशंसा करते विदा होते हैं — केवल ईर्ष्या से जलता दुर्योधन नहीं।

शुकदेवजी ने इस कथा के श्रवण का फल बताते हुए अध्याय समाप्त किया: जो कोई विष्णु के इन कर्मों का — चेदिराज के वध, बन्दी राजाओं की मुक्ति और इस महान् यज्ञ का — कीर्तन करता है, वह सब पापों से छूट जाता है।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. भक्तों की आज्ञा मानना प्रभु की लीला है। युधिष्ठिर को आश्चर्य होता है कि जिनकी आज्ञा ब्रह्मा और शिव मानते हैं, वे मर्त्य राजाओं की इच्छा पूरी करते हैं। जैसे उदय और अस्त सूर्य को नहीं छूते, वैसे ही श्रीकृष्ण के कर्म उन्हें न ऊँचा करते हैं न नीचा; अपने प्रेमियों के अधीन होना उनकी शुद्ध कृपा है।
2. श्रीकृष्ण को अर्पित सम्मान सब प्राणियों तक पहुँचता है। सहदेव का तर्क (श्लोक 19 और श्लोक 24) यह है कि प्रभु स्वयं ही सब देवता, देश, काल और धन हैं, और प्रत्येक प्राणी की आत्मा हैं; उनके हाथों में रखा दान अनन्त हो जाता है। अग्रपूजा अतिथियों की श्रेणी नहीं, बल्कि उसकी पहचान है जो अकेला सबको अपने में समेटे है।
3. जहाँ प्रभु की निन्दा हो, वहाँ से हट जाइए। श्लोक 40 यहाँ की सबसे स्पष्ट शिक्षा है: प्रभु या उनके भक्त की निन्दा सुनकर वहीं बने रहना अपने कठिन अर्जित पुण्य की हानि है। कान ढँककर निकल जाने वाले ऋषियों ने सही मार्ग दिखाया।
4. निन्दा के आगे मौन प्रभु की गरिमा है। श्रीकृष्ण शिशुपाल के प्रलाप का एक शब्द से भी उत्तर नहीं देते, जैसे सिंह सियार की उपेक्षा करता है; हर अपमान उत्तर के योग्य नहीं होता।
5. प्रभु ने अपनी ही पूजा में अपने निन्दक का उद्धार क्यों किया। दो घटनाएँ जान-बूझकर आमने-सामने रखी गई हैं: श्रीकृष्ण समस्त प्राणियों की आत्मा के रूप में पूजित होते हैं, और फिर जिसने इसी सत्य को नकारा था वही ज्योति बनकर उनमें खिंच आता है (श्लोक 45)। शुकदेवजी श्लोक 46 और जय-विजय के स्मरण से यह रहस्य खोलते हैं: शिशुपाल का वैर स्वयं प्रभु की व्यवस्था थी — वैकुण्ठ के एक शापित सेवक का

अन्तिम जन्म — और तीन जन्मों का द्वेषपूर्ण स्मरण भी उसे उनसे दूर न रख सका। यदि प्रभु पर टिका द्वेष भी आत्मा को उन तक लौटा लाता है, तो प्रेम कितना अधिक निश्चित जाएगा। भाव ही गति का बीज है।

एक भक्तिमय चिन्तन

इस अध्याय में मुझे सबसे अधिक शिशुपाल का पतन नहीं, युधिष्ठिर के आँसू छूते हैं। उन्होंने पृथ्वी जीती है, देवताओं और ऋषियों को एकत्र किया है, फिर भी जब श्रीकृष्ण के चरणों का जल उनके सिर को छूता है, तब वे रोते-रोते प्रभु को देख तक नहीं पाते। कुछ ही क्षण बाद वह पुरुष, जिसने श्रीकृष्ण के सिवा कुछ सोचा ही नहीं — भले ही द्वेष में — एक ज्योति-रेखा बनकर उन्हीं में लौटा लिया जाता है। आँसुओं से अन्धे भक्त और प्रकाश में विलीन शत्रु के बीच भक्ति की समूची शिक्षा खड़ी है: हमारे विचार निरर्थक नहीं हैं; वे तय कर रहे हैं कि हम कहाँ जाएँगे। तो हम सावधान रहें कि क्या सुनते हैं, और अपने स्मरण को उनसे भर लें जो स्मरण के योग्य हैं।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज प्रार्थना में बैठते समय कल्पना करें कि प्रभु के चरणों का जल, युधिष्ठिर के परिवार की तरह, आपके सिर पर रखा जा रहा है, और अपने दिन में उन्हें पहला स्थान दें। यदि कहीं प्रभु, शास्त्र या किसी सच्चे भक्त का उपहास सुनें, तो ऋषियों का अनुसरण करें — वहाँ न ठहरें, उसमें सम्मिलित न हों, और चुपचाप अपना मन उनके नाम में लौटा लें। आरम्भ करें इस मन्त्र से: ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

उपसंहार

दशम स्कन्ध का यह चौहत्तरवाँ अध्याय स्वर्ग और पृथ्वी को युधिष्ठिर की यज्ञशाला में एकत्र करके एक सत्य प्रकट करता है: सात्वतों के स्वामी प्रत्येक प्राणी की आत्मा हैं, अग्रपूजा के अधिकारी हैं, और अपने निन्दकों तक के अन्तिम आश्रय हैं। शिशुपाल का द्वेष ज्योति में समाप्त होता है, युधिष्ठिर की भक्ति आनन्द के आँसुओं में, जबकि दुर्योधन की ईर्ष्या फल देने को शेष है। उस सभा की स्मृति हमें सिखाए कि हम पहले श्रीकृष्ण का सम्मान करें, निन्दा से बिना हिचक मुँह मोड़ लें, और अपने किसी विचार को उनके सिवा कहीं और टिकने न दें।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), दशम स्कन्ध (उत्तरार्ध), अध्याय 74, पृ. 430–435।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़्डम • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण सहित दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में प्रस्तुत हैं। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के संबंध या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-10-chapter-74-deliverance-of-shishupala-rajasya-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

